

पाठ्यक्रम का देसीकरण बैगा विद्या द्वारा प्रस्तुत सवाल



पद्मा सारंगपाणी

बैगा एक जनजाति है जो मध्य भारत में निवास करती है। ये लोग जंगलों व चिकित्सा के बारे में अपने व्यापक ज्ञान के लिए मशहूर हैं। इस ज्ञान को जानकार प्रेक्विशनर (गुरु) द्वारा अपने चेलों या नौसिखियों को हस्तान्तरित करने के लिए स्थानीय शैक्षिक परम्परा है। ज्ञान प्रणाली स्थानीय और मौखिक है। इस ज्ञान के हस्तान्तरण को सहारा देने वाली शैक्षिक परम्परा और समाजीकरण में भी ये गुण झलकते हैं और इन पर इस बात का भी प्रभाव है कि उत्पादन जीवन-निर्वाह स्तर का है तथा जनजाति के संगठन में या बच्चों के जीवन में कोई केन्द्रीकृत अथॉरिटी नहीं है। इस परचे में इस खूबी और औपचारिक स्कूली शिक्षा के बीच

अलगाव की पड़ताल की गई है। गौरतलब है कि औपचारिक स्कूली शिक्षा की शिक्षण विधि और पाठ्यक्रम में एक साक्षर परम्परा को मानकर चला जाता है, जहाँ ज्ञान को सन्दर्भ से मुक्त पाठ्य वस्तु में प्रस्तुत किया जाता है और बच्चे पहले से ही एक केन्द्रीकृत शैक्षिक/वयस्क अथॉरिटी को स्वीकार करने के लिए तैयार होकर आते हैं। वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में, जब स्कूली पाठ्यक्रम में देशज ज्ञान को शामिल करने पर ज़ोर दिया जा रहा है, यह परचा ऐसे समावेश की ज्ञानशास्त्रीय व्यावहारिकता पर सवाल खड़े करता है। दो भागों की ज़ुंखला के इस पहले भाग में पढ़ते हैं कवर्धा के बैगा लोगों के समाज, संस्कृति और औपचारिक स्कूली व्यवस्था के बारे में।

बैगा मध्य-भारत के वन क्षेत्र में रहने वाली एक जनजाति है। इस परचे में औपचारिक स्कूली पाठ्यक्रम और बैगा लोगों के स्थानीय/देशज ज्ञान व शैक्षिक परम्परा के परस्पर सम्बन्धों की चर्चा की गई है। मेरी रुचि बैगा ज्ञान परम्पराओं और औपचारिक स्कूल संस्था की परम्पराओं व तौर-तरीकों के बीच निरन्तरताओं व अनिरन्तरताओं के महत्व व सम्भावनाओं में है। परचे में समकालीन सरोकार के दो मुद्दों पर विचार किया गया है: पाठ्यक्रम अध्ययनों में स्कूल बनाम घर के विभाजन का मुद्दा और वर्तमान भारतीय स्कूली पाठ्यक्रम नीति में देशज ज्ञान के समावेश का मुद्दा।

स्कूल और जिस दुनिया, बच्चे के घर और समुदाय की दुनिया, में वह स्थित है, के बीच सम्बन्ध पाठ्यक्रम सम्बन्धी सैद्धान्तीकरण और आनुभविक अध्ययनों का विषय रहा है। माइकल

यंग की 1971 में छपी पुस्तक, जिसमें उन्होंने पाठ्यक्रम को समस्या के रूप में प्रस्तुत किया था, के प्रकाशन के बाद शोधकर्ता स्कूली शिक्षा के इस पहलू के प्रति संवेदी रहे हैं कि वह एक गैर-एकरूप समाज में सामाजिक स्तरीकरण और गैर-बराबरी को बढ़ावा देता है।

बात चाहे औपनिवेशिक शिक्षा प्रणालियों के तहत देशज समुदायों की हो या मुख्यधारा के बरक्स हाशिए पर या सामाजिक रूप से वंचित समुदायों की हो, स्कूली दुनिया और बच्चे की दुनिया (घर और समुदाय, सांस्कृतिक व भाषाई, दोनों रूपों में) के बीच असन्तोषजनक सम्बन्धों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। इस सन्दर्भ में 'खाई', 'ध्रुवीकरण', 'अन्तर्विरोध', 'दूरियाँ', और 'गैर-निरन्तरता' जैसे शब्दों का उपयोग किया गया है। औपनिवेशिक काल में

स्कूली शिक्षा की वजह से अपने माता-पिता के समुदाय से 'अलगाव' की बात को समूचे भारत में देखा गया था। यह बात आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा सम्बन्धी अध्ययनों में आज भी देखी जा रही है।

भारत में आदिवासी या सामाजिक रूप से वंचित समुदायों* के मामले में महसूस की गई इस खाई के जवाब में जो एक नीतिगत पहल हुई है वह 'शिक्षणीयता' (यानी व्यक्ति या समुदाय की शिक्षित हो पाने की काबिलियत - educability) पर आधारित है। इसके अन्तर्गत अन्तरों की व्याख्या प्रतिकूलता या डिसएडवांटेज के रूप में की जाती है और माना जाता है कि 'खाई' को पाटने के लिए, इन बच्चों के लिए आवासीय स्कूल जैसे ढाँचों की मदद से, घर के प्रभाव को न्यूनतम करना होगा। कई राज्यों में आदिवासी कल्याण विभाग आश्रम शालाओं के नाम से आवासीय स्कूल चलाते हैं।

इसके विपरीत, कुछ कार्यक्रमों में स्कूल को बच्चों की दुनिया के नज़दीक लाने का तरीका भी अपनाया गया है, खास तौर से गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) के द्वारा। 'बच्चे को स्कूल में सहज महसूस हो, इसके लिए पारम्परिक खेल, चुटकुले, पहेलियाँ,

कहानियाँ, गीत और नृत्य' को शामिल करने का सुझाव 'खाई को पाटने' के इस दूसरे तरीके में से उभरता है। अलबत्ता, दोनों ही मामलों में 'खाई', 'ध्रुवीकरण' वगैरह जैसे शब्द प्रतीकात्मक हैं। मूल्य-आधारित निर्णय से आगे जाकर ये यह नहीं बताते कि अन्तर में क्या-क्या शामिल है। इसके लिए ऐसे अवधारणात्मक औज़ार चाहिए, जो हमें पाठ्यक्रम के संघटन को इस लिहाज़ से समझने में मदद करें कि इसमें समावेश के लिए किसके ज्ञान को चुना जाता है या इसे कैसे प्रस्तुत किया जाता है या सीखने वाले (छात्र) के लिए इसके परिणाम क्या होते हैं। इन परिणामों को हम बर्नस्टाइन के 'भाषाई कोड्स' और 'फ्रेमिंग' या बोर्डों के हैबिटस जैसी अवधारणाओं के तहत समझते हैं। इस परचे में मैं बैगा देशज ज्ञान (जिसे विद्या कहते हैं) और औपचारिक स्कूली ज्ञान के बीच अन्तरों को ज्ञान-सम्बन्धी तौर-तरीकों और सीखने की परम्पराओं के सन्दर्भ में देखूंगी।

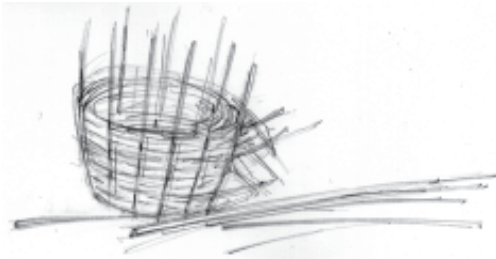
इस परचे की पृष्ठभूमि में दूसरा समकालीन सरोकार सरकारी स्तर पर स्कूली पाठ्यक्रम में 'देशज ज्ञान' के समावेश में बढ़ती दिलचस्पी है। यह बात राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में साफ झलकती है। भारत में देशज ज्ञान में

* भारत का संविधान कुछ समुदायों के लिए विशेष प्रावधान व विशेषाधिकारों की ज़रूरत को मान्य करता है ताकि पारम्परिक सामाजिक संगठन की वजह से होने वाली वंचना के अतिरेक का सामना किया जा सके। ऐसी लाभान्वित जातियों व जनजातियों को संविधान की अनुसूची में शामिल किया गया है।

बहुत विविधता है। यह धार्मिक व दार्शनिक अध्ययनों से लेकर परफॉर्मिंग आर्ट्स व हस्तकलाओं तक में है। ज्योतिष को पहले ही विश्वविद्यालय स्तर पर एक विषय के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

सुंदर का तर्क है कि किसी किस्म के देशज ज्ञान के लिए वैधता व संरक्षण प्राप्त कर पाना सम्बन्धित समूह की स्थिति व ताकत का प्रतिबिम्ब है। ज्योतिष को हिन्दू दक्षिणपन्थी समर्थन हासिल है, जो उस राजनैतिक दल से सम्बद्ध है जो वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता में है। लिहाज़ा, उसे सरकारी मान्यता मिल गई है मगर राजनैतिक ताकत से रहित किसी आदिवासी समूह के देशज ज्ञान को सम्भवतः औपचारिक शिक्षा प्रणाली में स्थान मिलना मुश्किल है। इस परचे में मैं इस बहस में जो आयाम जोड़ना चाहती हूँ, उसका सम्बन्ध देशज ज्ञान, खास तौर से मौखिक ज्ञान, और साक्षर परम्परा पर आधारित आधुनिक औपचारिक स्कूल के तौर-तरीकों और ढाँचों के बीच ज्ञानशास्त्रीय तालमेल से है।

अगले खण्ड में बैगा जनजाति का परिचय दिया गया है और उसके बाद



के खण्ड में इस इलाके में औपचारिक स्कूली शिक्षा की स्थिति की चर्चा की गई है। इसके बाद जादू-टोने और चिकित्सा की ज्ञान प्रणाली, जिसे विद्या कहते हैं और जिसके लिए यह जनजाति मशहूर है, का विवरण दिया गया है और इस बात की चर्चा की गई है कि विद्या सीखी कैसे जाती है। इसके अन्तर्गत यह भी बताया गया है कि बचपन के समाजीकरण के वे कौन-से पहलू हैं जो विद्या सीखने के लिहाज़ से प्रासंगिक हैं। अन्तिम खण्ड में साक्षर परम्परा पर आधारित स्कूल की तुलना 'विद्या सीखने की परम्परा' से की गई है।

उत्तरी कवर्धा के बैगा

बैगा एक छोटी-सी जनजाति है जो मध्य भारत में वन क्षेत्र में ऊपरी नर्मदा के किनारे मैकल पर्वत त्रुंखला में निवास करती है। वैसे गोंड, अगरिया और प्रधान जैसी अन्य जनजातियाँ तथा अहीर (यादव) तथा पंका जैसी अन्य जातियाँ भी इस क्षेत्र में निवास करती हैं मगर बैगा इस क्षेत्र के मूल निवासी माने जाते हैं। वे जो भाषा बोलते हैं उसे 'बैगा बोली' कह सकते हैं। यह उस इलाके में आम तौर पर बोली जाने वाली भाषा छत्तीसगढ़ी का एक रूप है।

बैगा लोगों का प्रथम व्यवस्थित मानव-वैज्ञानिक विवरण रसेल व हीरालाल की 'ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ सेंट्रल इंडिया' में मिलता है। अलबत्ता, उनकी खानाबदोश जीवन



शैली, शिफ्टिंग खेती के रिवाज़, जादू-टोना और चिकित्सा का सबसे महत्वपूर्ण मानव-वैज्ञानिक विवरण वेरियर एल्विन ने दिया है। ब्रिटिश औपनिवेशिक वन-नीति के चलते बैगा लोग एक जगह बसकर हल चलाकर खेती करने

पर मजबूर हुए थे। उनकी वर्तमान जोतें छोटी-छोटी और प्रायः अंसिंचित हैं। कृषि जीवन-निर्वाह के स्तर की है। वे अपनी कई ज़रूरतों के लिए जंगल पर निर्भर हैं: ईंधन और घर बनाने व टोकरियाँ बनाने के लिए बाँस, लघु वनोपज, जिसे बेचते हैं, कन्द, फल और शिकार जिनकी मदद से वे अपने भोजन को पूरा करते हैं, और जड़ी-बूटियाँ तथा मनोरंजन। भारत सरकार ने बैगा को एक 'आदिम जनजाति' (अत्यन्त दूर-दराज़ के क्षेत्र में रहने वाले तथा बहुत कम साक्षरता वाले समूह, बैगा के मामले में साक्षरता 5 प्रतिशत है) के रूप में वर्गीकृत किया

है। वे राज्य के कई विकास व कल्याण कार्यक्रमों के लक्ष्य हैं।**

1999 से 2001 के दरम्यान में तीन बार में करीब 6 महीने छत्तीसगढ़ प्रान्त के कवर्धा ज़िले के दलदली आरक्षित वन क्षेत्र के निकट बसे दो दूर-दराज़ के गाँवों में बिताए थे। गाँव बाघमारा और कसाईकुंडा ज़िले के उत्तरी हिस्से में एक छोटी-सी नदी की घाटी में एक-दूसरे से 1 कि.मी. की दूरी पर बसे हैं। दोनों गाँवों में मिलाकर कुल करीब 52 परिवार हैं। कान्हा आरक्षित वन पास ही है। दलदली पठार पर सबसे बड़ा गाँव है जो बाघमारा से करीब 7 कि.मी. दूर है। यहाँ एक आवासीय विद्यालय है, एक साप्ताहिक हाट लगता है और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की एक दुकान है। स्कूल आदिवासी कल्याण विभाग द्वारा संचालित आश्रम शाला है और इसमें दो स्कूल हैं - एक कन्या स्कूल और एक बालक स्कूल। दोनों एक ही इमारत में हैं। हाल ही में इसे माध्यमिक स्कूल का दर्जा मिला है।

इस क्षेत्र में जातियाँ और जनजातियाँ आम तौर पर मिले-जुले गाँवों में रहती हैं। बाघमारा और कसाईकुंडा दूर-दराज़ के गाँव होने की वजह से

** सव्यसाची (1991) का विचार है कि इस संवैधानिक प्रावधान के चलते 'आदिवासी' पहचान को एक जड़ता मिली है जो अतीत में नहीं थी। अब 'आदिवासी' और 'गैर-आदिवासी' के बीच की सीमा रेखा अलंघनीय हो गई है। बेटे भी बताते हैं कि "अभी हाल तक आदिवासी एक स्थानीय तंत्र था और अलग-अलग क्षेत्रों के आदिवासियों का एक-दूसरे से खास लेना-देना नहीं था। अब न सिर्फ एक सुनिश्चित आदिवासी पहचान है जिसे कानूनी मान्यता प्राप्त है, बल्कि उस पहचान को बनाए रखने और सुदृढ़ करने में एक राजनैतिक हित भी है।" (बेटे, 1986)

यहाँ मुख्य रूप से बैगा लोग रहते हैं। कुछ परिवार गोंड और अहीर (यादव) हैं। सड़कों और सरकार प्रायोजित योजनाओं तक ज़्यादा पहुँच वाले गाँवों के मुकाबले इन गाँवों के बैगा लोगों ने पारम्परिक पहनावा और रहन-सहन बरकरार रखा है। औरतें कपाल और शरीर पर विशिष्ट गोदने गुदवाती हैं और लाल-सफेद चौखाने वाली साड़ियाँ घुटनों तक पहनती हैं। आदमी आम तौर पर लम्बे बाल रखते हैं जिन्हें वे एक जूड़े के रूप में सिर के बाजू में बाँधते हैं। बूढ़े लोग आज भी सिर्फ लंगोट पहनते हैं। सभी आदमी जब गाँव से बाहर जंगल की ओर जाते हैं तो हमेशा कुल्हाड़ी साथ रखते हैं। औरतें जंगल जाते समय हंसिया लेकर चलती हैं।

इस इलाके में रहने वाले विभिन्न जातीय व जनजातीय समूहों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति कई लिहाज़ से एक-समान है। पारम्परिक व्यावसायिक परस्पर निर्भरता है। जैसे, अहीर परिवार को मवेशी सँभालने की ज़िम्मेदारी दी जाती है, जिसके लिए वस्तु के रूप में भुगतान किया जाता है। या किसी हुनरमन्द बैगा को बाँस के सूपड़े बनाने का काम दिया जा सकता है या किसी बैगा गुनिया को बीमारी के इलाज के लिए बुलाया जा सकता है। इलाके के सारे लोग जंगल पर निर्भर हैं मगर बैगा लोगों का दावा है कि जंगल के साथ उनका रिश्ता खास है और निडर है। ऐसा माना

जाता है कि उनके पास जंगलों का, जड़ी-बूटियों का और बीमारियों के चमत्कारिक इलाज का विस्तृत ज्ञान मौजूद है। बाघमारा और कसाईकुंडा, दोनों गाँवों में कई चिकित्सक थे - 'वैदी' भी (जड़ी-बूटियों वाले) और 'गुनिया' भी (जादू-टोने वाले)। इन लोगों ने यह कला अपने गुरुओं से सीखी है और अब इसका अभ्यास करते हैं।

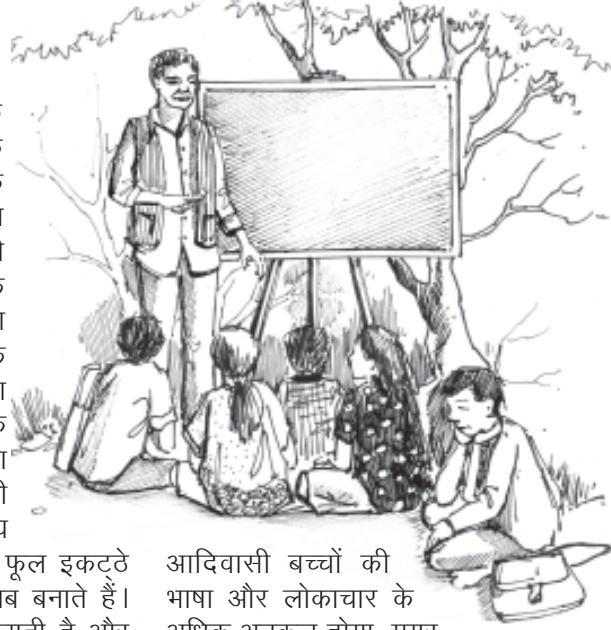
परिवार भी रिश्तेदारियों या दोस्तियों (जो औपचारिक रस्मी दोस्ती भी हो सकती है या अपेक्षाकृत ढीली-ढाली समावेशी धारणा संगवारी भी हो सकती है या सहमना लोगों का समूह भी हो सकता है) के ताने-बाने में गूँथे हुए हैं। इस तरह के गठन के पीछे कारण सामाजिक और श्रम/आर्थिक हो सकते हैं। सांस्कृतिक रूप से हरेक समूह के अपने अलग-अलग पहलू होते हैं मगर कुछ बातें साझा भी हैं। बैगा गीत और नृत्य इलाके के अन्य समूहों से अलग हैं और इस मामले में उन्हें अपनी श्रेष्ठता पर फख्र है। हर नई पीढ़ी में बैगा उत्पत्ति की पौराणिक कथा कुछ आदमी सीखते हैं और हर साल 'बिद्री' और 'देवली' के समय यह कथा सुनाई जाती है। बिद्री और देवली बीज और अच्छी फसल के लिए किए जाने वाले महत्वपूर्ण सालाना अनुष्ठान हैं। यह कथा आज भी बैगा लोगों के लिए खुद को समझने, इलाके में रहने वाले अन्य समुदायों से अपने रिश्ते को समझने, विश्व से अपने सम्बन्ध को

समझने और नियति के अपने एहसास का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। एक बार मैं उस समय इस क्षेत्र में पहुँची थी जब बिद्री बनाने का समय नज़दीक था। इस समय कई बैगा बुजुर्गों ने इस रिवाज़ के महत्व के बारे में बताया और यह भी बताया कि इसे सम्पन्न करने में बैगा लोगों की क्या भूमिका होती है। इलाके के सारे समुदाय

अप्रैल माह में महुआ के फूल इकट्ठे करते हैं और उनसे शराब बनाते हैं। यह शराब पवित्र मानी जाती है और इसे पूजा के मौकों पर चढ़ाते और पीते हैं। जब भी वे इसे पीते हैं तो पीने से पहले कुछ बूँद शराब धरती पर छिड़कते हैं। यह प्रथम बैगा पुरुष व बैगा महिला को याद करने का उनका तरीका है। बिद्री और बिदा जैसे अवसरों पर, जो बुराई को दूर रखने के लिए साल में दो बार मनाए जाते हैं, और चेरता जैसे बच्चों के त्योहारों पर गाँव में रहने वाली सारी जातियाँ और जनजातियाँ शामिल होती हैं।

औपचारिक स्कूल

दलदली गाँव में आदिवासी कल्याण विभाग द्वारा संचालित दो आश्रम शालाएँ हैं - एक लड़कों के लिए और एक लड़कियों के लिए। हालाँकि यह सोचा गया था कि ये आश्रम शालाएँ अलग पाठ्यक्रम पर आधारित होंगी जो



आदिवासी बच्चों की भाषा और लोकाचार के अधिक अनुकूल होगा, मगर अधिकांश आश्रम शालाएँ मुख्यधारा के सरकारी स्कूलों के समान ही चलती हैं। दलदली की आश्रम शालाएँ भी कोई अपवाद नहीं हैं। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, जो छत्तीसगढ़ी और बैगा-बोली, दोनों से बहुत अलग है और बच्चों के लिए अनजानी है। सारे शिक्षक मैदानी इलाकों के हैं और वे न सिर्फ इस दुर्गम क्षेत्र के आदिवासियों की संस्कृति से अनभिज्ञ हैं, बल्कि उसके बारे में बहुत अच्छे विचार भी नहीं रखते। कई शिक्षकों को लगता है कि सबसे पहले तो इन बच्चों को साफ-सफाई और सही ढंग से खाने-पहनने का सबक देना चाहिए। स्कूल काफी अनियमित ढंग से चलता है और जब वह चलता है, तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पाठों को बार-बार दोहराने पर



आधारित होती है। जिस चीज़ को वे याद कर रहे हैं, उसमें से कोई अर्थ निकालने की कोशिश न तो शिक्षक करते हैं, न बच्चे। एक बैगा हरे सिंह अपने बच्चों को ऐसी आश्रम शालाओं में भेजते हैं जो कहीं ज़्यादा दूर हैं। ये शालाएँ कहीं ज़्यादा नियमित हैं, मगर शिक्षा पद्धति वैसी ही है।

पिछले पाँच वर्षों में इस इलाके में कई सरकारी स्कूल खुले हैं। कसाईकुंडा में एक स्कूल है, जो गाँव प्रधान के घर के सामने के आंगन में चलता है। इस स्कूल में दो शिक्षक हैं और कम-से-कम एक तो अपना काफी समय गाँव में ही बिताता है और रोज़ाना कक्षा लगाता है। बाघमारा का स्कूल सरकारी 'शिक्षा गारंटी स्कीम' शाला (ईजीएस) है। शिक्षक महीने में मात्र 2-3 सप्ताह उपस्थित होते हैं। बहुत ही कम बैगा बच्चे इन स्कूलों में जाते हैं। अभिभावक साफ तौर पर कोई रुचि नहीं रखते और बच्चों को स्कूल जाने पर मजबूर

नहीं करते। बच्चे अक्सर स्कूल से भाग जाते हैं। उन्हें स्कूल की नीरसता और शिक्षकों के निर्मम ताने-उलाहने सुनने की बजाय जंगल में घूमना या झींगे पकड़ना बेहतर लगता है। बाघमारा के कई बच्चों ने कबूल किया कि स्कूल न जाने का यही कारण है। ईजीएस स्कूल में ज़्यादा 'बाल-स्नेही' पाठ्यक्रम की अपेक्षा की जाती है। मगर किताबें, जो हिन्दी में हैं, बच्चों की समझ से बाहर ही हैं। मुख्यधारा की किताबों और ईजीएस, दोनों में जिस भाषा का इस्तेमाल होता है और जो वस्तुएँ, परिदृश्य और मूल्य प्रस्तुत किए जाते हैं, वे बैगा लोगों और उनके बच्चों के लिए पूरी तरह बेगाने होते हैं। दलदली के ग्राम प्रधान की राय में गीत गाने और कविताएँ बोलने की नई तकनीक 'पिछड़ी' तकनीक है और इससे उन बच्चों को कोई मदद नहीं मिलेगी जो पहले से ही 'पिछड़े' हुए हैं।

ज्ञान का खज़ाना

सरस्वती का 1972 का शोध पत्र 'ट्रेडिशनल मोड्स ऑफ लर्निंग' (सीखने के पारम्परिक तरीके) भारत में पारम्परिक ज्ञान प्रणालियों को लेकर एक महत्वपूर्ण अध्ययन है। इस पर्व में उन्होंने धर्मशास्त्र, तर्क, व्याकरण, स्थापत्य कला, चिकित्सा और कुम्हारी व कपड़ा बुनने जैसी हस्तकलाओं को भी शामिल किया है। उनका सुझाव है कि शास्त्रिक ज्ञान और लौकिक ज्ञान के बीच भेद करना चाहिए। शास्त्रिक

ज्ञान में सैद्धान्तिक अध्ययन और स्थापत्य कला या चिकित्सा जैसे प्रयुक्त शोध शामिल होते हैं, जिनके लिए निर्देशक ग्रन्थ और शिक्षण के मान्य तरीके और पाठ्यक्रम होते हैं। यह ज्ञान सुव्यवस्थित होता है और साक्षर परम्परा का अंग होता है। हस्तकलाओं, जैसे मिट्टी के बर्तन बनाना या कपड़ा बुनना, को लौकिक ज्ञान के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इन्हें अनुभव व अभ्यास से, गलती कर-करके सीखा जाता है, और ये गैर-साक्षर प्रकृति के होते हैं। मानव वैज्ञानिकों द्वारा किए गए विभेद के मुताबिक जहाँ शास्त्रिक ज्ञान 'वृहद परम्परा' के अंग हैं, वहीं लौकिक ज्ञान 'लघु परम्परा' के अंग हैं। अलबत्ता, इस योजना में उस ज्ञान के लिए कोई स्थान नहीं है जो बैगा लोगों के पास है और जिसका वे उपयोग करते हैं। इसमें जड़ी-बूटियों, रोग निदान व उपचार का ज्ञान शामिल है जिसे एक मौखिक, गैर-साक्षर परम्परा के अन्तर्गत प्रसारित किया जाता है, सीखा जाता है और याद रखा जाता है। यह इस अर्थ में स्थानीय है कि यह संस्कृति व इकोलॉजी का भाग है। इसमें शामिल सूचना की विविधता, जटिलता और विशेषीकरण और उसके उपयोग की दृष्टि से यह आयुर्वेद और स्थापत्य

कला जैसी अन्य देशज शास्त्रिक प्रणालियों के समकक्ष है। मगर हस्तकलाओं की तरह यह मौखिक है और 'लघु परम्पराओं' के गैर-साक्षर विश्व का प्रतिफल है। जिस सामाजिक-सांस्कृतिक और खासकर जिस इकोलॉजिकल सन्दर्भ में इसे सीखा और अभ्यास किया जाता है, वह ज्ञान का एक अहम हिस्सा है। और तो और, यह ज्ञान प्रणाली जीवन निर्वाह स्तर की अर्थ-व्यवस्था आधारित जीवन शैली से निर्मित 'हैबिटस' में साकार होती है, उपयोग की जाती है और प्रसारित की जाती है।***

बैगा गाँवों को ज्ञान-शास्त्रीय समुदाय माना जा सकता है जो चिकित्सकीय ज्ञान के उपयोग व प्रसारण में जुटा है। समुदाय के विभिन्न सदस्यों के बीच इस ज्ञान का बँटवारा है। जैसे बाघमारा गाँव में लगभग सारे वयस्कों के पास जंगल के पेड़-पौधों के बारे में काफी विस्तृत ज्ञान है और विभिन्न पेड़-पौधों के चिकित्सकीय गुणों की अलग-अलग स्तर की जानकारी है। बच्चे, लड़के-लड़कियाँ दोनों, पाँच-छः साल की उम्र से ही गाँव के आसपास की कई आम जड़ी-बूटियाँ पहचान सकते हैं। कई मामलों में वे यह भी बता पाए कि इन जड़ी-

*** नन्दा (1989) आदिवासी समुदायों के लोकाचार को समझने में उनके जीवन के आर्थिक आधार तथा उत्पादन क्रियाकलापों के महत्व की ओर ध्यान दिलाते हैं। जीवन-निर्वाह स्तर की अर्थ-व्यवस्था को संकीर्ण ढंग से गरीबी बता देना हमें इस आयाम के प्रति असंवेदी बना देता है। 'स्थानीय' ज्ञान के गुणधर्मों के विश्लेषण और इस शब्द के विभिन्न अर्थों की एक समीक्षा के लिए देखें एंटवाइलर (1998)।



बूटियों का इस्तेमाल किस तकलीफ, आम तौर पर पेट की तकलीफों, के इलाज में होता है। आठ साल की उम्र तक तो बच्चे का पर्यावरण भी काफी व्यापक हो जाता है और उसके बारे में ज्ञान भी नाटकीय ढंग से बढ़ जाता है। जब हम साथ-साथ जंगल गए, तो उन्होंने 60 से ज़्यादा पेड़-पौधों के नाम उनके चिकित्सकीय गुणों समेत बताए। उन्होंने यह भी बताया कि किन पेड़ों पर फल लगते हैं जिन्हें खाते हैं या जो अन्य तरह से उपयोगी होते हैं। उन्होंने अपनी फेहरिस्त को मेरे ऊपर तरस खाकर रोका क्योंकि कुछ समय बाद मैं याद नहीं रख पा रही थी। खुद बैगा लोग तो जंगल के वनस्पति जीवन के अपने ज्ञान को कोई विशेष बात नहीं मानते। वैसे वे यह जानते हैं कि हर गाँव में कुछ पुरुषों का ज्ञान कहीं ज़्यादा विस्तृत और विशेष होता है। जहाँ तक चिकित्सकीय ज्ञान का सवाल है, वे

मानते हैं कि यह अपेक्षाकृत विशिष्ट होता है और किसी गुरु से ही सीखा जा सकता है। इस ज्ञान को वे विद्या कहते हैं और मानते हैं कि इसकी उत्पत्ति ईश्वरीय है: प्रथम बैगा, नांगा बैगा, ही प्रथम चिकित्सा पुरुष था और उसे यह ज्ञान भगवान महादेव से प्राप्त हुआ था। कई सारे मंत्रोच्चारों में इस बात का उल्लेख होता है कि किन गुरुओं से होकर विद्या हस्तान्तरित हुई है और जिनके नाम आज भी शक्तिशाली हैं (वर्तमान अभ्यासी स्वयं को इस वंशावली का हिस्सा मानते हैं, हालाँकि कभी-कभार ही उन्हें यह पता होता है कि उनके गुरु का गुरु कौन था)। इस ज्ञान में विभिन्न जड़ी-बूटियों और उनके नुस्खों का ज्ञान और कई पारलौकिक शक्तियों का ज्ञान शामिल है। इनमें अच्छी शक्तियाँ भी हैं और बुरी भी जो अस्वस्थ करती हैं और जिन्हें प्रसन्न करके रखना पड़ता है। कुछ चिकित्सक जड़ी-बूटियों का ज़्यादा ज्ञान रखते हैं और उन्हें 'वैदी' कहा जाता है। अन्य को जादू-टोना और पारलौकिक शक्तियों का ज़्यादा ज्ञान होता है और वे 'गुनिया' कहलाते हैं। शगुन-अपशगुन का विचार करने के अलावा गुनिया और वैदी, दोनों ही नाड़ी भी देखते हैं और अन्य शारीरिक जाँचें भी करते हैं। वे टट्टी-पेशाब के बारे में जानकारी भी लेते हैं। विद्या को पुरुषों का अधिकार क्षेत्र माना जाता है। जिन औरतों को विद्या आती

है, उन्हें डायन माना जाता है। सुनी माई (यानी दाई) का काम करने वाली औरतों के पास गर्भावस्था और प्रसव सम्बन्धी जो जानकारी होती है उसे विद्या नहीं माना जाता। बैगा लोगों के विशेषीकृत ज्ञान का यह विवरण अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय विमर्श में 'देशज ज्ञान' के विवरण से मेल खाता है। ऐसे अधिकांश विवरण मूल निवासियों के जैव विविधता और जड़ी-बूटियों और इकोलॉजी सम्बन्धी गैर-पाश्चात्य, मौखिक ज्ञान के बारे में हैं। अधिकांशतः ये वे मूल निवासी हैं जो उपनिवेशिकरण के फलस्वरूप हाशिए पर धकेले गए हैं, बेदखल किए गए हैं। बेटे जैसे मानव वैज्ञानिकों का तर्क रहा है कि इस जुम्ले का उपयोग भारतीय सन्दर्भ में नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके तहत जिस पृथक्करण की प्रस्तावना दी जा रही है वह वैध न होने के

अलावा खतरनाक भी है। इस शब्द में जो नैतिक बल निहित है, वह श्रेष्ठतावादी और सामुदायिक पहचान की राजनीति को बढ़ावा देता है। मैंने यहाँ इस शब्द का उपयोग बैगा विद्या के एक सामान्य विवरण के विचार से किया है, न कि उसके लिए किसी विशिष्ट हैसियत के दावे के रूप में। ऐसा उसकी गैर-पाश्चात्य उत्पत्ति को रेखांकित करने और यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि इसे देशज ज्ञान प्रणालियों के मौजूदा विमर्श में शामिल किया जाए। जैसा कि सरस्वती हमें याद दिलाते हैं, भारत में 'देशज ज्ञान प्रणालियों' में विविध ज्ञानशास्त्र और ज्ञानशास्त्रीय तौर-तरीके शामिल हैं: पाठ्य-आधारित से लेकर वृहद व लघु, दोनों तरह की परम्पराओं के मौखिक व्यवस्थितकृत ज्ञान, प्रदर्शन कलाएँ और हस्तकलाएँ।

(...जारी)

पद्मा सारंगपाणी: भौतिक शास्त्र में एम.एससी. और शिक्षा में पीएच.डी.। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, बैंगलोर और टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसिस, मुंबई में प्रोफेसर रही हैं। पिछले दशक से उनकी विशेषज्ञता और शोध कुछ खास क्षेत्रों में रहे हैं जैसे गुणवत्ता और शिक्षा, शिक्षक, पढ़ाना और शिक्षक शास्त्र, पाठ्यक्रम शिक्षा, देसी ज्ञान और गैर-स्कूली हालातों में ज्ञान का संचार व प्रारम्भिक शिक्षा। इन्दिरा गाँधी मेमोरियल फैलोशिप के सहारे उन्होंने वह शोध किया जिस पर यह लेख आधारित है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्र: सौम्या शुक्ला: सेंट जोसफ कॉन्वेंट स्कूल, भोपाल से हाल ही में 12वीं की परीक्षा उत्तीर्ण की है। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं।

यह लेख 'कम्पैरेटिव एजुकेशन' पत्रिका के अंक 39 (नं 2), पृष्ठ 119-209 में कारफैक्स पब्लिशिंग द्वारा छापा गया था।

लेख में ज़िक्र सन्दर्भों की पूरी सूची के लिए मूल लेख देखें।